R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य–4 रुपये, वर्ष–25, अङ्क–4 अप्रैल 2025

मङ्गलायतन

पणमामि वड्ढमाणं तित्थं
धम्मस्स कत्तारं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के
प्रवचन शैली की विशेषताएँ

1. गुरुदेवश्री हमेशा ग्रंथ पर आधारित ही प्रवचन किया करते हैं।
2. गुरुदेवश्री प्रासंगिक विषय के साथ पूरा न्याय करते हैं और चल रहे विषय में नय विवक्षा का यथोचित प्रयोग करते हैं।
3. गुरुदेवश्री चल रहे विषय की प्रमाणिकता के लिए अन्य आचार्यों के ग्रन्थों का उद्धरण देते हैं।
4. गुरुदेवश्री की शैली गंभीर होती है।
5. गुरुदेवश्री किसी भी उदाहरण को लंबा नहीं करते बल्कि उदाहरण देकर सीधा विषय पर आ जाते हैं।
6. गुरुदेवश्री की प्रवचन शैली में सहज प्रवाह होता है, कोई दबाव नहीं।
7. गुरुदेवश्री को विषय पूरा करने का कोई आग्रह नहीं होता यदि प्रवचन का निर्धारित समय पूरा हो गया तो वे आधी लाइन छोड़कर ही प्रवचन को पूर्ण कर देते हैं।
8. गुरुदेवश्री कभी भी, 'तुम' की भाषा का प्रयोग नहीं करते बल्कि जीव ने अभी तक अपना कल्याण नहीं किया इस तरह का वाक्य प्रयोग करते हैं।
9. गुरुदेवश्री के प्रवचनों में चारों अनुयोगों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।
10. गुरुदेवश्री कभी भी समय का अतिक्रमण नहीं करते, इसका प्रमाण है कि गुरुदेवश्री के 9300 व्याख्यान (कुछ प्रवचन को छोड़कर जो 45 मिनट के हैं) 1 घंटे के हैं।
11. गुरुदेवश्री कभी अपने प्रवचनों हल्के उदाहरणों का प्रयोग नहीं करते।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र (e-पत्रिका)

वर्ष-25, अङ्क-4 (वी.नि.सं. 2551; वि.सं. 2082) अप्रैल 2025

आदीश्वरस्वामी वन्दूँ...

आदीश्वर स्वामी, वन्दूँ मैं बारम्बार।
धन्य घड़ी प्रभु दर्शन पाये, वन्दूँ बारम्बार॥टेक॥

कर्मभूमि की आदि में, मुक्तिमार्ग अविकार।
दर्शायो आनन्दमय, कियो परम-उपकार॥ 1॥

परम-शान्तमुद्रा अहो, भेदज्ञान दर्शाय।
दिव्यध्वनि सुनि आपकी, विभ्रम सर्व पलाय॥ 2॥

भव्य अनेकों तिर गये, निजस्वरूप को साध।
इस अशरण संसार में, आपहि तारण हार॥ 3॥

मुक्ति मार्ग प्रभु आपका, हमें आज भी प्राप्त।
भेदज्ञानियों से अहो, निज में ही हे आप्त॥ 4॥

प्रभुता प्रभुवर आप सम, दीखे अन्तर माहिं।
होय परम निर्ग्रन्थता, भाव सहज उमगाहिं॥ 5॥

नहीं प्रयोजन जगत से, चाह न रही लगार।
तृप्त स्वयं में ही रहूँ, सहजरूप सुखकार॥ 6॥

साभार : मङ्गल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक

डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

सम्पादक मण्डल

बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

क्या - कहाँ

चरणानुयोग	आत्मज्ञानी जीवों की विरलता	5
द्रव्यानुयोग	श्री समयसार नाटक	9
	स्वानुभूतिदर्शन :	17
	योगसार – प्रवचन	21
करणानुयोग	साधु तथा श्रावक	28
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	32
	समाचार–दर्शन	33

चरणानुयोग

परम उपकारी जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आत्महित की प्रेरणादायक विशिष्ट प्रवचनांश

आत्मज्ञानी जीवों की विरलता

अपने ज्ञान-आनन्दमय जीव को भूलकर, अज्ञान के कारण अनादि काल से जीव संसार-परिभ्रमण कर रहा है और प्रतिक्षण भावमरण से मर रहा है। उस भावमरण का अभाव करने के लिये यह बात है।

आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है, आत्मा में शान्ति है; जिसे इस बात का पता नहीं है, वह बाहर में शान्ति मानता है परन्तु वहाँ शान्ति नहीं है। शरीर, पैसा, परिवार इत्यादि वस्तुओं में सुख नहीं है, वे तो परवस्तुएँ हैं। वे पड़ी रहती हैं और आत्मा कहीं चला जाता है, इसलिए उनमें सुख नहीं है किन्तु जीव, अज्ञान से उनमें सुख मानता है और शरीर इत्यादि में अपनापना मानता है - यही संसार है और इसी का दुःख है। उस दुःख के अभाव का उपाय बताते हुए ज्ञानी कहते हैं कि भाई! सुख तो आत्मा में है। यह बात समझने से ही शान्ति प्राप्त होती है परन्तु पहिले इसकी रुचि होना चाहिए कि अरे रे! मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? अनन्त काल में महामूल्यवान् मनुष्यभव प्राप्त हुआ तो उसमें आत्मा का स्वरूप है? - यह जानने से दुःख का अभाव होगा। संसारी जीव के भावमरण का अभाव होने के लिये ज्ञानियों का करुणापूर्ण उपदेश है।

आत्मा में चैतन्य खजाना है। अन्दर में आनन्द और शान्ति है परन्तु जिस प्रकार कस्तूरी मृग अपनी नाभि में स्थित कस्तूरी को भूलकर बाह्य में सुगन्ध मानता है; इसी प्रकार अज्ञानी जीव बाहर में सुख खोजता है। अन्दर में सुख है - ऐसे आत्मा का ज्ञान हो तो सद्बोधरूपी चन्द्रमा का उदय होता है और फिर जिस प्रकार दूज में से पूर्णिमा होती है, उसी प्रकार उस सम्यग्ज्ञान में से केवलज्ञान होता है।

यह आत्मा, सुख का भण्डार है। इसमें से ही सुख प्रगट होता है। जिस प्रकार कच्चे चने को सेकने पर उसमें से मिठास प्रगट होती है, वह मिठास बाहर से प्रगट नहीं होती; अपितु चने में ही विद्यमान थी, वह प्रगट हुई है। इसी प्रकार सच्ची पहचान करने पर आत्मा में सुख प्रगट होता है, वह बाहर से नहीं आता; अपितु अन्दर भरा है, उसी में से आता है। इस मनुष्यभव में आत्मा का सच्चा ज्ञान करना ही कर्तव्य है।

यदि मनुष्य अवतार प्राप्त करके भी आत्मा की पहिचान नहीं की तो इस अवतार की कोई विशेषता नहीं है। जिस प्रकार कच्चा चना कड़वा लगता है और उसे बो दिया जाए तो उगता है परन्तु उसे सेक दें तो मिठास आती है और वह फिर से उगता नहीं है। इसी प्रकार आत्मा, अज्ञानभाव से दुःखी है और नये-नये भव धारण कर रहा है परन्तु आत्मा की सच्ची पहचान करने से उसे सुख प्रगट होता है और फिर से भव धारण नहीं करना पड़ता।

यह आत्मा, आबाल-गोपाल सबको ख्याल में आ सके — ऐसा है। आत्मा, मोक्षसुख का देनेवाला है - ऐसे आत्मा को अनुभव से जाना जा सकता है किन्तु महान् विद्वान् भी वाणी से उसका सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सकते। वह ज्ञान में आता है किन्तु वाणी में नहीं आता। जिस प्रकार घी खाने पर उसके स्वाद का ज्ञान होता है परन्तु वाणी में वह सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता; इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप ज्ञान में ज्ञात होता है परन्तु वाणी में नहीं कहा जा सकता। जब आत्मा को जाननेवाला ज्ञानी भी उसे वाणी से सम्पूर्णरूप से कहने में समर्थ नहीं है, तब अज्ञानी तो उसे कह ही कैसे सकता है ?

यह मनुष्य देह, दुर्लभ है और इसमें भी आत्मा का भान करना तो महादुर्लभ है। बहुत से जीव, मनुष्यपना प्राप्त करके भी आत्मा को नहीं जानते और तीव्र लोलुपता से कौए-कीड़े-मकोड़े जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। यहाँ कहते हैं कि हे भाई ! मनुष्यपना पाकर तू अपने आत्मा को जान ! आत्मस्वभाव ऐसा है कि ज्ञान से अनुभव किया जा सकता है परन्तु वाणी में नहीं आ सकता।

श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि :

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब॥

ऐसे आत्मा का भान अभी विदेहक्षेत्र में आठ-आठ वर्ष के राजकुमार भी करते हैं। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ - ऐसा अनुभव आठ वर्ष के बालक भी कर सकते हैं। चैतन्य की महिमा का विस्तार इतना अधिक है कि वाणी से पार नहीं पड़ता, परन्तु ज्ञान के अनुभव से ही पार पड़ता है। घी का वर्णन लिखकर चाहे जितनी पुस्तकें भर दें अथवा चाहे जितना कथन करे, परन्तु उससे सामनेवाले जीव को घी का स्वाद नहीं आ सकता; इसी प्रकार चैतन्य का कितना भी कथन किया जाए, किन्तु अनुभव के बिना उसका पता नहीं पड़ता अर्थात् साक्षात्कार नहीं होता।

भाई! आत्मा को जाने बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आ सकता। आत्मा, जानने-देखनेवाला पदार्थ है; महिमावन्त भगवान है; वाणी, जड़-अचेतन है, उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। तब आत्मा को जानने का उपाय क्या? यही कि स्वानुभव द्वारा वह ज्ञात होता है। लाखों-करोड़ों प्राणियों में कोई विरला प्राणी ही अन्तर में अनुभव करके आत्मा को जानता है। पुण्य से आत्मस्वरूप की पहचान नहीं होती, क्योंकि वह तो आत्मस्वरूप से बहिर्भाव है। आत्मतत्त्व, अन्तर्मुख स्वानुभव से ही ज्ञात होता है। करोड़ों जीवों में कोई विरले जीव ही स्वानुभव से जिस आत्मा को जानते हैं, वह आत्मस्वभाव इस जगत् में जयवन्त वर्तो -ऐसा कहकर, यहाँ माङ्गलिक किया है।

अन्तर में आत्मस्वरूप तो प्रत्येक को है परन्तु स्वानुभव द्वारा करोड़ों जीवों में कोई विरले जीव ही उसे जानते हैं। यद्यपि वह अन्तर में है तो, तथापि बाहर में भ्रमते हैं।

एक शिष्य को ज्ञान चाहिए था। उसने किसी के समीप जाकर कहा कि मुझे ज्ञान दो, तब गुरु ने कहा कि अमुख सरोवर की मछली के पास जाकर कहना, वह तुझे बतायेगी। वह मनुष्य, मछली के पास गया और कहने लगा – 'हे मछली! मुझे ज्ञान चाहिए।' तब मछली ने कहा – 'भाई! मुझे बहुत जोरदार प्यास लगी है; इसलिए पहले मुझे पानी पिलाओ, फिर मैं तुम्हें ज्ञान बताऊँगी।' तब उस मनुष्य ने आश्चर्य से कहा – 'अरे! तू इस मधुर जल के सरोवर में पड़ी है, तेरे पास पानी भरा है, फिर भी तुम मुझसे पानी माँग रही हो?' उत्तर में मछली ने कहा – 'भाई! तेरा ज्ञान तो तेरे अन्तर में पूरा-पूरा है, उसमें से ज्ञान निकाल, बाह्य में से ज्ञान नहीं आता।' देखो, अपने में ज्ञान भरा है, उसे तो जीव जानता नहीं और बाहर में ज्ञान खोजता है, तो कैसे प्राप्त होगा? अन्तरस्वभाव में ज्ञान भरा है, उसे पहचानने से सम्यग्ज्ञानरूपी चन्द्रमा का उदय होकर आत्मा की मुक्ति होती है।

वास्तविक जिज्ञासु को गृहस्थाश्रम में भी आत्मा का भान होता है। राज-पाट, स्त्री-पुत्रादि होने पर भी आत्मा को समझ सकता है और कल्याण होता है। आत्मा को समझे बिना, वह स्त्री-पुत्रादि अथवा घर-बार को छोड़कर जङ्गल में रहे तो भी उसका कल्याण नहीं होता।

आत्मस्वभाव महिमावन्त है, वह मोक्षसुख का प्रदाता है; वह स्वानुभव से ज्ञात होता है किन्तु वाणी के विस्तार से ज्ञात नहीं होता। ऐसे आत्मस्वभाव को जाननेवाले लाखों-करोड़ों जीवों में कोई विरले ही होते हैं। ऐसा आत्मा जयवन्त वर्तता है और आत्मा को जाननेवाले भी सदा होते हैं। यद्यपि आत्मा को जाननेवाले विरले ही होते हैं परन्तु उनका विरह कभी नहीं होता। पूर्व काल में आत्मा को जाननेवाले थे, वर्तमान में हैं और भविष्य में भी होंगे।

ऐसे आत्मा को जानने से मुक्ति प्रगट होती है और संसार में परिभ्रमणरूप जन्म-मरण का अभाव होता है। इसलिए आत्मा को जानना ही मनुष्यभव का कर्तव्य है।● *(सम्यग्दर्शन, भाग-2, पृष्ठ 27-30)*

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ताकर्म क्रिया द्वार प्रवचन

तथा आत्मा कैसा है?-'आनन्दरूपी' है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प नहीं है, इसलिये उसको कोई दु:ख नहीं है। वह तो आनन्द स्वरूप है। अरे! पर ऐसा आत्मा कैसे मिले? हमारी नजर तो आनन्दरूप आत्मा में पहुँचती ही नहीं। भाई! इस नजर पहुँचाने के लिये बहुत पात्रता चाहिये। समझ, विचार, स्वाध्याय, सत्समागम आदि द्वारा पात्रता प्राप्त करके अन्तर में देखे तो यह स्वरूप समझ में आने योग्य है।

आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। जैसे पूरणपोली में जहाँ देखो वहाँ पूरण का माल भरा है; उसीप्रकार सम्पूर्ण आत्मा में आनन्द का माल भरा है। अरुपी, किन्तु वस्तु है न! उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का रस विद्यमान है। वह कब से है?-कि अनादि से है और अनंतकाल तक रहने वाला है। वस्तु कोई नई नहीं होती। अनादि से है..है...है..वस्तु नई नहीं होती और नष्ट नहीं होती। अर्थात् अनन्त-अनन्तकाल तक रहनेवाली है। ऐसे अनादि-अनन्त आत्मा को एक पल में ग्रहण कर लो! ऐसा धर्मी का विचार होता है और वह इसी विचार को अन्य को समझाते हैं।

आत्मा को त्रिकाली कहने से उसके तीन भेद नहीं पड़ जाते है। त्रिकाली कहने से उसका आदि-अंत नहीं है। वह सदा है..है..है-ऐसा त्रिकाली स्वरूप है। उसमें भूत-वर्तमान-भविष्य का भेद नहीं है।

अन्तर्मुख होकर ऐसे आत्मा को एक पल में ग्रहण कर ले! यही करने योग्य है। अन्य सब तो चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण के मार्ग है। आत्मा अनादि का ऐसा का ऐसा होने पर भी अपने भान बिना भूत जैसा हो रहा है, भूत की तरह परिभ्रमता है। इसलिये अब जब से यह बात सुनी है तब से तत्काल आत्मा को ग्रहण कर ले-अन्तर में उतर जा! अभी थोड़ा यह दूसरा

काम कर लूं, फिर यह करुँगा–ऐसा वायदा रहने दे! तू बाहर में कर–करके क्या कर सकता है? तू एक रजकण के दो टुकड़े भी नहीं कर सकता। मात्र विकल्प कर सकता है।

श्रोता:– रजकण तो अत्यन्त सूक्ष्म होता है, अत: जीव उसका कार्य तो नहीं कर सकता; परन्तु शरीर का कार्य तो कर सकता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री:– आत्मा किसी परद्रव्य का कुछ नहीं कर सकता है। शरीर अजीव है। अजीव भी एक पदार्थ है। अत: उसका समस्त कार्य अजीव द्रव्य स्वयं करता है, आत्मा उसका कार्य नहीं कर सकता; परन्तु इसको अजीव तत्व की भी श्रद्धा नहीं है; अत: इसको प्रश्न उठा ही करते हैं कि जीव हो तभी तो शरीर चलता है। इसमें (शरीर में) रुधिर होता है इत्यादि सब जीव के होने से ही होता है न! परन्तु इतना विचार नहीं करता कि आत्मा के होने पर भी शरीर का हलन–चलन क्यों रुक जाता है...रुधिर क्यों नहीं बनता.. ? विचार करे तो ख्याल आवे। जब जड़ और चेतन तत्व ही भिन्न है तो कौन किसका कार्य करे? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य नहीं करता–यह बात इसको गहराई से जंचती ही नहीं; इसकारण इसको लगता है कि अन्य का करें तो महान कहलायेंगे।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा जड़ का तो कुछ करता ही नहीं; परन्तु जो दया, दान के विकल्प होते हैं उन्हें भी आत्मा नहीं करता–यह बात (यहाँ) सिद्ध करनी है। वस्तु के स्वरूप में विकल्प नहीं है इसलिये धर्मी विकल्प को नहीं पकड़ते, बल्कि एक क्षण में त्रिकाली द्रव्य को पकड़ लेते हैं। निर्विकल्प सत्‌चिदानन्द प्रभु स्वयं ज्ञानानन्द स्वरूप से ध्रुवस्वरूप विद्यमान है। सबको उसे एक पल में ग्रहण कर लेने योग्य है। श्रीमद्‌जी भी लिखते है न! 'स्व द्रव्य के ग्राहक शीघ्र होओ! स्वद्रव्य की रक्षा शीघ्र करो! स्वद्रव्य में व्यापक शीघ्र होओ!– क्षण में स्वद्रव्य में पसर जाओ। स्वद्रव्य के धारक शीघ्र होओ। भगवान आत्मा के पूर्णानन्द स्वरूप को श्रद्धा में धारण करो, ज्ञान में धारण करो; रागादि को धारण मत करो। श्रीमद् ने यह बात 17 वर्ष की उम्र

में की है; परन्तु 71 वर्ष की उम्र वालों को भी इसका भान नहीं है। भक्ति करते-करते कल्याण हो जायेगा- ऐसा मान लिया है।

स्वद्रव्य के रमक शीघ्र होओ!-अखण्डानंद ध्रुव में रमो, पुण्य-पाप और संकल्प-विकल्प में तो अनादि से रमता आया है। अब उनमें रमना छोड़कर अखण्डानन्द में रमो, उसी के ग्राहक शीघ्रता से होओ...पुण्य-पाप के विकल्पों को पकड़ना छोड़कर वस्तु को पकड़ो।

'ताकौ अनुभव कीजै, परम पीयूष पीजै।'-भगवान आत्मा आनन्द का सरोवर है। उसमें से आनन्दामृत पिया ही करो। बहिने झरने में पानी भरने जाती है न! झरने में पानी आया ही करता है, आया ही करता है। उसी प्रकार आत्मा निर्विकल्प आनन्दरस का झरना है, उसमें से आनन्द पी! विकल्प के वेदन में तो दु:ख है। जैसे अग्नि को नहीं पिया जाता, क्योंकि उससे तो जल जाते हैं; उसीप्रकार पुण्य-पाप के विकल्प तो अग्नि है, उनके पीने से तू जलता है। इसलिये ज्ञानी तुझको रोकते हैं कि तू उन्हें मत पी और आत्मा के आनन्द को पी! अज्ञानी अंधे को अग्नि पीने से रोकते है वह कठिन लगता है। भाई! यह तो जहर है, इसका पान करके तू मर जायेगा, अब अतीन्द्रिय आनन्दामृत का पान करके जीवित हो- आनंदित हो।

'बंध को विलास डारि दीजै पुद्गल मैं'-पुण्य-पाप के भाव बंधरूप है, उन्हें पुद्गल में डाल दे। वे मेरे हैं-ऐसा मत मान।

बहुत से लोगों को ऐसा लगता है कि दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम तो धर्म है और तुम उनको पुण्य कहकर निषेध कर देते हो, इसमें लोगों का कल्याण रुक जाता है। भाई! यहाँ तो जिसको धर्म करना है उसको धर्म का स्वरूप कहा जाता है। किसी के कहने से कोई कुछ छोड़ नहीं देता, इसकी मान्यता में गहराई से राग की ही मिठास पड़ी है, इसलिये यह किया ही करता है। वस्तुत: तेरे स्वभाव में पुण्य-पाप के विकल्प नहीं है; इसलिये उनको पुद्गल के खाते में डाल दे। जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है उस शुभभाव को भी आत्मा का स्वरूप मत मान, पुद्गल में डाल दे!

अब आगे आत्मानुभव की प्रशंसा कहने वाला 30 वाँ पद कहते हैं।

आत्मानुभव की प्रशंसा

दरबकी नय परजायनय दोऊ,
श्रुतग्यानरूप श्रुतग्यान तो परोख है।
सुद्ध परमातमाकौ अनुभौ प्रगट तातैं,
अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोख है॥
अनुभौ प्रंवान भगवान पुरुष पुरान,
ग्यान औ विग्यानघन महा सुखपोख है।
परम पवित्र यौं अनंत नाम अनुभौके,
अनुभौ विना न कहूं और ठौर मोख है॥30॥

अर्थः– द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दोनों नय श्रुतज्ञान हैं और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाणे है, पर शुद्ध परमात्मा का अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण है। इससे अनुभव शोभनीय, निर्दोष, प्रमाण, भगवान, पुरुष, पुराण, ज्ञान, विज्ञानघन, परम सुख का पोषक, परम पवित्र ऐसे और भी अनंत नामों का धारक है, अनुभव के सिवाय और कहीं मोक्ष नहीं है ॥30॥

काव्य – 30 पर प्रवचन

त्रिकाल ध्रुव आत्मद्रव्य को जाननेवाले–विकल्पवाले नय को द्रव्यार्थिकनय कहते हैं और जो एकसमय की अवस्था को जानता है उसको पर्यायार्थिकनय कहते हैं। ये दोनों विकल्पात्मक श्रुतज्ञान के अंश हैं। इन भेदों वाला श्रुतज्ञान परोक्ष होने से उसमें आत्मा अनुभव में नहीं आता। वस्तु को द्रव्यस्वभाव से देखो तो ध्रुव है और पर्याय की ओर से देखो तो वह अध्रुव है–उत्पाद, व्यय वाली है। इसप्रकार विकल्पवाले श्रुतज्ञान से दोनों नयों के विषय को जानने पर भी वह परोक्ष समकित है; परन्तु जहाँ शुद्ध परमात्मा का अनुभव होता है वहाँ तो प्रत्यक्ष अनुभव है।

देखो! पुण्य–पाप के विकल्प को तो निकाल दिया, परन्तु विकल्पवाले ज्ञान को भी परोक्ष कहकर निकाल दिया है। वस्तु तो विकल्प रहित है। वस्तु तो निर्विकल्प–अविकल्पी आनन्दघन है, उसमें राग नहीं है। पहले विकल्पवाले ज्ञान में निर्णय किया हो कि मैं द्रव्यस्वभाव से ध्रुव और पर्याय से क्षणिक हूँ; परन्तु

ऐसे परोक्ष ज्ञान में आत्मा का अनुभव नहीं होता। कोई लाखों शास्त्र पढ़कर अभिमान करता हो उसकी तो बात ही नहीं है-उसको तो अनुभव होता ही नहीं; परन्तु श्रुतज्ञान की विकल्पवाली दशा से भी अनुभव नहीं होता। इसलिये यहाँ उसकी भी गिनती नहीं है। जब द्रव्य-पर्याय के विकल्प भी दुःखरूप है, तब बाहरी क्षयोपशम का अभिमान तो दुःखरूप है ही। ऐसे अभिमानवाले जीव को वस्तुस्वरूप का बहुमान आ ही नहीं सकता। परन्तु यहाँ तो अभिमान रहित, किन्तु विकल्प वाले ज्ञान में अनुभव नहीं होता-ऐसा कहना है। विकल्पात्मक ज्ञान में द्रव्य-पर्याय का स्वरूप विचारता है; परन्तु उसमें प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। इसकारण आत्मा प्रत्यक्ष हुए बिना आनन्द का स्वाद नहीं आता।

'कलश टीका' में इस कलश के भावार्थ में कहा है कि जितने नय हैं वे श्रुतज्ञानरूप हैं। श्रुतज्ञान परोक्ष है, अनुभव प्रत्यक्ष है-इसकारण श्रुतज्ञान बिना जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष अनुभवता है। पूर्व में 19 वें कलश में भी आ गया है कि श्रुतज्ञान से आत्मा का विचार करने पर बहुत विकल्प उठते हैं। एक नय से भेदरूप, एक नय से अभेदरूप-इसप्रकार अनेक नयों से आत्मा को विचारने से स्वरूप का अनुभव नहीं होता।

श्रीमद् में भी आता है कि 'सब शास्त्रन के नय धार हिये...यह साधन बार अनन्त कियो तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।'

शुद्ध परमात्मा का अनुभव तो प्रत्यक्ष है। राग और मन के अवलम्बन बिना आत्मा अनुभव में आने पर यह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। इस ज्ञान को ही यथार्थ ज्ञान कहा जाता है। कितना ही धारणा ज्ञान हों; परन्तु वह ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार श्रुतज्ञान द्वारा किया जाने वाला द्रव्य-पर्याय का विकल्पात्मक ज्ञान भी ज्ञान नहीं है। कारण कि वस्तु सम्पूर्णतः प्रत्यक्ष चीज है, उसको प्रत्यक्ष न करे वहाँ तक उस ज्ञान को ज्ञान कहने में नहीं आता।

यहाँ शुद्ध परमात्मा कहने से अरहंत और सिद्ध की बात नहीं है; परन्तु शुद्ध और ध्रुव एकरूप ज्ञायकभाव की बात है, जो कि त्रिकाल प्रगट है उसे 'परमात्मा' कहा है। उसका अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञान में ही होता है। परमात्मा परोक्ष ज्ञान में अनुभव में नहीं आता। तब राग और विकल्प द्वारा आत्मा अनुभव में आवे यह बात कहाँ रही? लोगों में झगड़ा पड़ जाए ऐसी बात है। लोगों को ऐसा लगता है

कि यह बात कहाँ से निकाली ? परन्तु जो है वह प्रकट होता है, सोनगढ़ में छपता है क्या इसलिये यहाँ का हो गया ?

(भाई !) प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ही प्रत्यक्ष वस्तु का अनुभव होता है।

क्या कहते हैं ? कि आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वभाव से परिपूर्ण भरी हुई वस्तु है। इस आत्मा को दो नयों के द्वारा पहिचानने में आता है। एक द्रव्यार्थिकनय और दूसरा पर्यायार्थिकनय। द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है उस ज्ञान के अंश को द्रव्यार्थिकनय कहते हैं और पर्याय के स्वरूप को जाननेवाले ज्ञान के अंश को पर्यायार्थिकनय कहते हैं। भेद पाड़कर जानने में राग साथ ही है, इस कारण ज्ञान को विकल्पात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं, यह वास्तविक तत्व कहते हैं।

जो जीव शरीर, वाणी, मन के विचार में ही रुका हुआ है वह तो आत्मा के अनुभव में आया ही नहीं है; परन्तु पुण्य के विकल्प में रुका हुआ है वह भी राग में खड़ा है। राग आत्मा का स्वभाव नहीं है, इसलिये उसमें धर्म नहीं है। जो दो नयों के द्वारा आत्मस्वरूप का रागमिश्रित विचार करता है वह भी राग मिश्रित श्रुतज्ञान होने से वास्तविक श्रुतज्ञान नहीं है, परोक्ष ज्ञान है। विकल्पात्मक विचार छोड़कर, अखण्ड अभेद चैतन्यस्वभाव का अनुभव तो प्रत्यक्ष है। ज्ञान में आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होना ही वास्तविक स्वानुभव है। आत्मा व्यवहाररत्नत्रय से अनुभव में नहीं आता।

अखण्ड अभेद आत्मा का अनुभव तो प्रत्यक्ष है। उसमें इसे किसी विकल्प के सहारे की आवश्यकता नहीं है। स्वसंवेदन ज्ञान में-अनुभव में आत्मा विराजमान है; इसलिये अनुभव शोभनीय है।

वस्तु तो त्रिकाल विराजमान है, परन्तु अनुभव की पर्याय द्वारा उसके विराजमानपने का अनुभव होता है। स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष, वेदन अर्थात् अनुभव होना, इसका नाम स्वसंवेदन है।

यह कोई अपने घर की बात नहीं कही जाती है। आचार्य कुन्दकुन्द और अमृतचन्द द्वारा कथित बात को ही पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं।

अनुभव 'अदोख' है अर्थात् निर्दोष हैं। आत्मा को अनुसरणकर आत्मा के आनन्द का वेदन होना ही आत्मा को शोभनीक है। यह अनुभव निर्दोष है। विकल्पमात्र अशोभनीक है-सदोष है। फिर भले ही वह व्यवहार रत्नत्रय का

विकल्प हो वह भी अशोभनीय है।

'अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रसकूप ।
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप ॥

अनुभव होने के पहले और बाद में भी व्रत, भक्ति, दान, तप आदि के शुभभाव होते हैं-आते हैं, परन्तु वे सदोष हैं, निर्दोष तो एक अनुभव ही है।

अनुभव प्रमाण सत्य है। राग मिश्रित विचार से रहित निर्विकल्प अनुभव हो वह प्रमाणज्ञान है, वह ज्ञान सच्चा है। अनुभव तो 'भगवान' है। पुण्य की क्रिया तो रंकाई है-दीनपना है और अनुभव तो भगवान है। यदि जन्म-मरणरूप संसार और आकुलता से छूटना होवे तो यह भगवान ही शरणरूप है, उपादेय है। स्वसन्मुख होकर सत्‌चिदानन्द प्रभु का अनुभव करना ही भगवान का अनुभव है। पुण्य-पाप तो दोष है। वह कोई वस्तु का स्वभाव नहीं है; इसलिये उसका आश्रय लेना तो दीनता है।

अनुभव 'पुरुष' है, शेष सब भाव नपुंसकता है, आत्मा नहीं। अनुभव 'पुराण' है-बहुत पुरानी अनादि की चीज है। अनन्त-अनन्त संत, ज्ञानी धर्मात्मा अनुभव करके ही मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। इसलिये अनुभव तो पुरानी चीज है। यह अनुभव की बात यहाँ से नई नहीं निकाली; बल्कि पुरानी है। सत्‌चिदानन्द प्रभु आत्मा का पद सदा सिद्ध समान है, उसको राग से हटकर, स्वसन्मुख होकर अनुभव करना वह 'पुराण' है।

अनुभव ही 'ज्ञान' है। आत्मा विकल्प और राग से रहित आत्मा का अनुभव करे तब उसको 'समकित' नाम दिया जाता है- ऐसा पाठ 144वीं गाथा में है, यह उस गाथा का श्लोक है इसमें कहते हैं कि अनुभव ही 'ज्ञान' है।

यहाँ कायर का काम नहीं है-पुरुषार्थ हीन का काम नहीं है। जो राग में पुरुषार्थ जोड़ता है वह नपुसंक है, पुराण पुरुष नहीं। पुरुष अर्थात् आत्मा, उसका अनुभव वह ज्ञान है। शास्त्र का पठन अथवा अन्य को पढ़ाना वह ज्ञान नहीं है। पाँच-पचास हजार श्लोक कंठस्थ हो जावे तो अज्ञानी को ऐसा लगता है कि मुझको तो समस्त शास्त्र मुखाग्र है; परन्तु वह ज्ञान नहीं है। शुद्ध आनंदकद का अनुभव ही 'ज्ञान' है।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव भगवान सर्वज्ञ ने जैसा कहा है वैसा ही

कुन्दकुन्दाचार्य देव कहते हैं और वही अमृतचन्दाचार्यदेव कहते हैं तथा उसी पर (कलशों पर) ही पंडित बनारसीदासजी ने यह पद बनाये हैं। उसमें वे कहते हैं कि ज्ञान तो उसको कहते हैं कि जिसके साथ आनन्द होवे। अतीन्द्रिय आनन्दसहित ज्ञान ही ज्ञान है। अकेले ज्ञान के क्षयोपशम में तो आत्मा नहीं आता। आत्मा अनुभव में आवे तब तो अनन्त गुणों का अभेद स्वाद पर्याय में आना चाहिये; वह तो आता नहीं, इसलिये उघाड़ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं है।

'अनुभव' विज्ञानघन है। आत्मवस्तु तो त्रिकाल विज्ञानघन है ही, परन्तु जो ज्ञान उसमें स्थिर होता है और विकल्प छूट जाता है उस अनुभव ज्ञान को भी विज्ञानघन कहा है। यह अनुभव परमसुख का पोषक है। जो ज्ञान वस्तु के अनुभव पूर्वक होता है उसमें आनंद का पोषण है। वह ज्ञान आनन्द से युक्त हुआ होता है। अशुभराग तो बंध का कारण है ही, परन्तु शुभराग भी बंध का कारण है और सदोष है। उनसे हटकर भगवान आत्मा का अनुभव करना, वह अनुभव परमसुख का पोषक है, कल्पित सुख का पोषक नहीं। पैसे का सुख तो कल्पित है। उसमें तो विचारे जीव दुःखी होते हैं और आत्मा के अनुभव का सुख तो आनन्दमय और परम पवित्र है।

आत्मा के अनुभव को परम और पवित्र भी कहते हैं। 'अनुभवप्रकाश' ग्रन्थ में पण्डित दीपचंदजी ने 'अनुभव' के बहुत नाम लिये हैं। 'द्रव्य संग्रह' में भी टीका में अनुभव शब्द आता है। आत्मा परम स्वभावी है, इसलिये आत्मराजा की पर्याय को भी 'परम' कहते हैं। 'अनुभव तो आत्मराजा की निर्मल पर्याय है न! इसलिये पवित्र है, शेष शुभाशुभ राग की क्रिया और उनका अनुभव तो अपवित्र है।

इसप्रकार 'अनुभव' के अनन्त नाम हैं। आत्मा में जितने-अनन्त गुण हैं उन सबके नाम अनुभव को लागू पड़ते हैं; कारण कि 'अनुभव' में समस्त गुणों का अंश अनुभव में आता है। 'सर्वगुणांश वह समकित' है इसलिये अनुभव को 'सम्यग्दर्शन' कहो, 'सम्यग्ज्ञान' कहो, 'सम्यक् स्वरूपाचरण चारित्र' कहो, 'अतीन्द्रिय आनन्द' कहो, 'आत्मा का साक्षात्कार' कहो, 'आत्मा से भेंट होना' कहो अथवा भगवान से भेंट होना कहो-यह सब नाम अनुभव के कहे जा सकते हैं।

क्रमशः

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न : 'मैं ज्ञायक ही हूँ'—ऐसा निर्णय क्या पहले बुद्धिपूर्वक होता होगा?

समाधान : प्रथम बुद्धिपूर्वक निर्णय होता है। उसे अंतर में ऐसी श्रद्धा (विश्वास) आ जाती है कि 'यह... मैं ज्ञायक हूँ'; और इस ज्ञायक को ग्रहण करके उसमें तीव्रता-उग्रता करने से अवश्य आगे बढ़ा जा सकेगा।—ऐसा निर्णय उसे आ जाता है। ज्ञायक के मूल में से स्वभाव ग्रहण होता है कि — ज्ञायक यही है। यह विभाव है, यह पर है, यह स्वभाव है और उस स्वभाव को ग्रहण करने से अंतर में से शांति एवं आनंद आयेगा। इसी ज्ञायक को ही ग्रहण करना है, उसके पुरुषार्थ को उग्र बनाने से अवश्य उसमें से स्वानुभूति प्रगट होगी—ऐसा जोरदार निर्णय प्रथम होता है और स्वानुभूति के पश्चात् भेदज्ञान की धारा सहज वर्तती है। पहले निर्णय होता है, परंतु भेदज्ञान की सहज धारा नहीं चलती; उसे ज्ञायक का ग्रहण होता है और छूट भी जाता है; पुरुषार्थ की ऐसी तीव्रता-मंदता होती रहती है; परंतु निर्णय प्रबल होता है कि इसी प्रकार का पुरुषार्थ करने से—इस ज्ञायक की उग्रता करने से—अवश्य मार्ग पर चला जा सकेगा।

स्वानुभूति के पश्चात् उसको ज्ञायक की धारा सहज वेगवान रहती है। उपयोग क्षण-क्षण में चाहे जहाँ बाहर जाये तथा अनेक प्रकार के विभाव के विकल्प आयें, तथापि ज्ञायक की धारा वर्तती है, ज्ञायक प्रतिक्षण भिन्न का भिन्न रहता है। बाहर में चाहे जो कार्य होता हो और अंतर में चाहे जैसे विकल्प आते हों तथापि ज्ञायक उनसे न्यारा का न्यारा रहता है; ज्ञायकधारा की परिणति पृथक् ही रहती है। खाते-पीते, चलते-फिरते, सोते-जागते—इस प्रकार किसी भी कार्य में निरंतर भेदज्ञान की धारा वर्तती है। वह (ज्ञायक) एकमेक होता ही नहीं, ऐसी सहज धारा रहती है।

मुमुक्षु को पहले तो मात्र निर्णय होता है, सहजधारा नहीं होती; परंतु

निर्णय ऐसा होता है कि इस ज्ञायक को ग्रहण करने से तथा उसकी उग्रता करने से अर्थात् भेदज्ञान करने से अवश्य स्वानुभूति होगी। उसकी भेदज्ञानधारा नहीं टिकती, क्योंकि सहज नहीं है, तथापि उसकी उग्रता करते-करते स्वानुभूति होगी ऐसा निर्णय है।

प्रश्न — संस्कारों की बातें बहुत आती हैं, तो गहरे संस्कार कैसे डालना ?

समाधान — ज्ञायक का बारम्बार अभ्यास करते रहना। गुरुदेव ने जो मार्ग बतलाया है उसका चिन्तवन, उसकी महिमा, उसकी लगन, सत्संग, श्रवण-मनन आदि बारम्बार करना। दही को मथते-मथते मक्खन बाहर आता है, उसी प्रकार बारम्बार ज्ञायक का मंथन करते रहना। गुरुदेव ने बतलाया है तद्नुसार बारम्बार पुरुषार्थ करना। मैं चैतन्य जुदा हूँ, यह विभाव जुदे हैं इस प्रकार भेदज्ञान के लिये तैयारी स्वयं को करनी है। बाह्य में देव-शास्त्र-गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो, उनका सत्संग मिले, श्रवण-मनन चलता रहे, वह सब बारम्बार करते रहना। बारम्बार उसके (ज्ञायक के) संस्कार दृढ़ करना। रुचि तीव्र हो तो वैसा बारम्बार करते रहना!

प्रश्न — परिणति को पलटने हेतु कैसा पुरुषार्थ करना चाहिये ? पढ़ते रहें या विचार करें ?

समाधान — एक चैतन्य तरफ की दृष्टि प्रगट करने के लिये पढ़ना-विचार करना। अंतर की दिशा पलटाने का हेतु होना चाहिए। परिणति तद्गतरूप—तद्रूप—तदाकार न हो जाये, तब तक पठन-विचार सब आता है। विचार में स्थिर न हो तो पठन करे अथवा पठन में से विचार करे, जहाँ परिणति स्थिर हो वह करते रहना। परंतु करने का तो एक ही है कि — दृष्टि को पलटाना है; अंतर की दिशा परिवर्तन करना है। वह न हो तब तक उसके पीछे पड़ जाना।

प्रश्न — 'ज्ञानी के पास जाकर तू भक्ति माँगना'—इसका अर्थ क्या ?

समाधान — भक्ति अर्थात् महिमा करना (उनके पास से) मैं जान लूँ.... मैं जान लूँ—ऐसे मात्र विकल्प करते रहने की अपेक्षा तू भक्ति अर्थात् महिमा करना। सत्पुरुष की दशा की महिमा आने पर तुझे अपने आत्मा की महिमा आने का तथा अपने आत्मा की दशा प्रगट करने का अवकाश है। मैं जान लूँ.... मैं जान लूँ, ऐसे लूखे (शुष्क) ज्ञान की माँग करने की अपेक्षा अर्थात् इसका क्या? इसका क्या? ऐसा करने की अपेक्षा उनकी महिमा करना। उससे तुझे अपने चैतन्य की महिमा आयेगी, चैतन्य की ओर झुकाव होगा। बाह्य में देव-शास्त्र-गुरु की महिमा करने से अंतर में अपने आत्मा की महिमा आने का अवकाश है। उसकी महिमा के बिना तू जो कुछ जानेगा वह किस काम का?

जिन्होंने आत्मा की दशा प्रगट की है तथा आत्मा की साधना की है, ऐसे गुरु की महिमा तुझे न आये तो अपने आत्मा की महिमा आने का कहाँ अवकाश है? अपने आत्मा की महिमा न आये और मात्र जानकारी किये करे तब भी आत्मा की ओर झुकने का अवकाश नहीं है। इसीलिये ज्ञान महिमापूर्वक होना चाहिये। महिमा बिना का ज्ञान तेरे स्वभाव की ओर नहीं आयेगी।

अरिहंत भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने वह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने। भगवान की दशा की महिमा आये तब भगवान के आत्मा की महिमा आये और तभी निजात्मा की महिमा आये। गुरु की दशा की महिमा आये तो गुरु को पहिचाने और गुरु को पहिचाने वह अपने को पहिचाने।

श्रीमद्जी ऐसा लिखते हैं कि 'ज्ञानी के पास ज्ञान माँगने की अपेक्षा भक्ति माँगना', क्योंकि उससे तुझे अपने स्वभाव की महिमा आयेगी। ज्ञान का स्वभाव क्या है? विभाव क्या है? इस प्रकार से तू तत्त्व-विचार करके जानना। परंतु मात्र जान लूँ... सीख लूँ... पढ़ लूँ... ऐसा कुछ करने से तू

उसमें ही रुक जायेगा और अपनी ओर झुकने का अवकाश नहीं रहेगा। गुरु के स्वभाव की महिमा आने से तू सहज ही अंतर में झुक जायेगा; तुझसे विभाव में टिका नहीं जा सकेगा। यदि गुरु की दिशा की महिमा आयी तो आत्मा की—स्वभाव की महिमा आयेगी, और तब विभाव में टिका नहीं जा सकेगा; अपनी ओर जाने का प्रयत्न चलेगा। निज महिमा के बिना ज्ञान अपनी ओर नहीं आयेगा। यदि तुझे अपनी महिमा नहीं आती तो तू विभाव की महिमा में खड़ा रहेगा और स्वभाव की ओर नहीं जा सकेगा। इसलिए महिमापूर्वक ज्ञान होता है। ज्ञान, भक्ति, तत्त्वविचार आदि आत्मा की महिमापूर्वक होने चाहिए।

ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सब हों तो अपने में ढल सकेगा। रुचि अपनी ओर की होगी। विभाव में एकत्वबुद्धि, तन्मयता होगी तो अपनी ओर ढला नहीं जाता। इसलिए उनसे तू अलग रहना; अपनी परिणति का वेग स्वभाव की ओर जाये ऐसी अंतरंग विरक्ति, महिमा, वैसे तत्त्व के विचार करना और अपने को पहिचानकर अपनी ओर ढलना। अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सब साथ होंगे तब ही अपने में ढला जा सकेगा। उसके बिना ढला नहीं जाता। ज्ञान के बिना कहाँ जायेगा ? और महिमा–भक्ति के बिना अकेला ज्ञान होगा तो वह लूखा हो जायेगा। इसलिए ज्ञान, महिमा, विरक्ति के बिना अपनी ओर जाया नहीं जा सकता।

क्रमशः

जिसे आत्मरुचि हुई हो — वह आत्मरुचि के धारक तीर्थङ्कर आदि के पुराणों को भी जाने तथा आत्मा के विशेष जानने के लिये गुणस्थानादिक को भी जाने। तथा आत्म आचरण में जो व्रतादिक साधन हैं, उनको भी हितरूप माने तथा आत्मा के स्वरूप को भी पहिचाने। इसलिए चारों अनुयोग ही कार्यकारी हैं।

— मोक्षमार्गप्रकाशक 201

योगसार ग्रन्थ पर परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

सामायिक – समताभाव किसे कहना? बात आयी – **'केवली एम भणइ'** आया है न? राग-द्वेष का परिहार (करके) समभाव को प्रगट करे, उसे सामायिक प्रगटरूप से केवली महाराज कहते हैं। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है – ऐसा जिसे अन्तर निर्णय और भान हुआ, उसे दूसरे प्राणियों के प्रति समभाव है। समझ में आया? धर्मी जीव की दृष्टि, मिथ्यादृष्टि से उलटी हो गयी है।

अज्ञानी दूसरों के काम देखकर इसने यह किया, उसने यह किया, इसने इसका बिगाड़ा, इसने इसका सुधारा – ऐसा मानकर अज्ञानी स्वयं राग-द्वेष करता है। ज्ञानी ऐसा जानता है कि कोई किसी का बिगाड़ता या सुधारता नहीं है। सब-सबकी दशा अपने कर्म -अनुसार संयोग-वियोग होता है। उसके कारण उसे दूसरों के प्रति इसने इसका ऐसा किया, इसलिए द्वेष होता है और इसने अच्छा किया, इसलिए राग होता है – ऐसा कारण सम्यग्दृष्टि को ज्ञान में, श्रद्धा में नहीं रहता। समझ में आया?

इस कारण यहाँ अन्त में यह कहा – **वह जानता है कि सर्व जीवों को सुख-दुःख और उनका जीवन-मरण उनके ही स्वयं के कर्मों के उदय अनुसार होता है, कर्मों के उदय को कोई मिटा नहीं सकता है।** यह बन्ध अधिकार की बात ली है। यहाँ धर्मी अपने आत्मस्वभाव को ज्ञाता-दृष्टारूप में स्वीकार करता, जानता, स्थिरता करता (है)। समझ में आया? दूसरे जीव का जीवन और मरण, सुखी-दुःखी के संयोग, कोई दूसरा किसी को कर सकता है – ऐसा ज्ञानी नहीं मानता है। जगत् में अनेक काम चलते हैं, उनके अपने-अपने अन्तरंग उपादान (के) कारण से (वे) कार्य होते हैं।

मुमुक्षु – निमित्त आवे तो होते हैं।

उत्तर – यह प्रश्न ही कहाँ है ? निमित्त कहाँ नहीं है ? उस समय पदार्थ में कार्य नहीं, उस समय नहीं। अनादि-अनन्त पदार्थ में प्रति समय कार्य होता है।

मुमुक्षु – अच्छा निमित्त मिले तो कार्य होवे न ?

उत्तर – उसमें अच्छे बुरे का प्रश्न ही कहाँ आया ?

वस्तु छह द्रव्य... इसमें थोड़ा लिखा है। फिर आगे आयेगा। जैसे यह सूर्य उगता है, उससे कोई ऐसा विचार करे कि यह सूर्य झट अस्त हो जाये तो ठीक और झट उगे तो ठीक। कम सूर्य हो तो ठीक और बढ़े तो ठीक ? यह तो उसके कारण से उगता है और उसके कारण से अस्त होता है। उसमें कम-ज्यादा करनेपने का कार्य किसी को विकल्प नहीं आता। ऐसे ही धर्मी जीव को जगत के पदार्थ उसके क्रम में परिणमते हुए अपनी अवस्था के कार्य को करे, तब दूसरी चीज उस समय जो अनुकूल हो, वह होती ही है; इस कारण उसे दूसरे में विषमता उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार मैंने दूसरे के काम कर दिये – ऐसा उसे अहंकार नहीं होता तथा दूसरे मेरा काम कर दें – ऐसी उसे मान्यता नहीं होती है।

मुमुक्षु – काम कर दिया यही अहंकार ?

उत्तर – अहंकार नहीं होता, इसका अर्थ भी कर नहीं सकता; इसलिए अहंकार नहीं है। किसका कार्य करे ? कौन द्रव्य निकम्मा है ? निकम्मा अर्थात् ? उसके काम में – कार्य की पर्यायरहित द्रव्य.... **पर्याय विजुत्तम दव्वम्** पर्यायरहित द्रव्य कहो या कार्यरहित द्रव्य कहो, दोनों एक ही स्वरूप हैं। आहा...हा...! समझ में आया ? शास्त्रकार की भाषा है कि **पर्याय विजुत्तम दव्वम्** और **द्रव्य विजुत्तम पर्याय** पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्यरहित पर्याय नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि कार्यरहित द्रव्य नहीं होता और कारणरहित वह कार्य नहीं होता। कारण अर्थात् द्रव्य। समझ में आया ? आहा...हा...!

छह द्रव्यों का जो वास्तविक स्वभाव है, उसका कारणरूप द्रव्य तो स्वयं कारण है, उसकी पर्याय का। प्रति समय कारण वह और पर्याय उसका कार्य। कहाँ कार्यरहित, वह द्रव्य है ? और उस कार्य का जो कारण, द्रव्य कहाँ नहीं है ? संयोगी जीव हो तो हो भले, उसके साथ क्या सम्बन्ध ?

मुमुक्षु – कारण-कार्य की मीमांसा....

उत्तर – यही कार्य-कारण की मीमांसा है। समझ में आया ?

इसलिए यहाँ कहते हैं, कोई किसी को कौन मारे ? कौन जिलाये ? कौन दे ? किसे दे ? किसे ले ? ऐसे समस्त भ्रम अज्ञानी को होते हैं कि इसने यह दिया और इसने यह लिया – ऐसा ज्ञानी को नहीं होता; इसलिए सहजरूप से धर्मी को उस प्रकार का पर का कारण बनाकर विषमताभाव उत्पन्न नहीं होता (था), वह नहीं होता। रविवार है, रविवार है, इसलिए वकील फुरसत में होते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा **ऐसे समभाव के धारक ज्ञानी गृहस्थ, सामायिक शिक्षाव्रत और मुनि, सामायिक चारित्र के पालक हैं।** गृहस्थाश्रम में भी अपने सम्यग्दर्शन और ज्ञान का भान है; इस कारण उसे पर के प्रति विषमता मिट गयी है अथवा अपने ज्ञान में रागादि कोई कमजोरी से होते हैं, उसे अपने स्वभाव में खतौनी नहीं करता है। समझ में आया ? यह दृष्टान्त दिया है, देखो !

समयसार कलश में कहा है : अन्तिम दृष्टान्त '**इति वस्तु स्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः**'' 'बन्ध अधिकार' का १७६ वाँ कलश है। 'बन्ध अधिकार' का १७६ वाँ संलग्न... संलग्न... १७६ (श्लोक)। '**रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः**' सम्यग्ज्ञानी अपने ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव को जानता हुआ, **ज्ञानी इस तरह सर्व वस्तुओं के स्वभाव को....** समस्त वस्तुओं के स्वभाव को और **अपने आप को ठीक-ठीक जानता है।** सभी चैतन्य परमात्मस्वरूप ज्ञाता हैं – ऐसा जानता है। राग-द्वेष की विषमता हो तो उसे व्यवहार से वैसा जानता है। द्रव्यरूप से जगत् के

परमाणु आदि सामान्यरूप से उन्हें जानता है, व्यवहाररूप से उनकी पर्याय उनका कार्य है; इस तरह उस पर्याय को कार्यरूप से व्यवहारनयरूप से जानता है। समझ में आया? उसकी पर्याय – कार्य व्यवहारनय से जानता है – ऐसा कहा। वहाँ वह पर्याय का व्यवहार है; निश्चय उसका द्रव्य है। समझ में आया?

परमाणु अनन्त हैं, उनका सामान्यपना, ध्रुवपना वह उनका द्रव्य है, निश्चय है। उसकी पर्याय वह प्रति समय (होती है), वह उसका व्यवहार। यह व्यवहार.... निश्चय और व्यवहार। पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। निश्चय, व्यवहार बिना का नहीं होता। द्रव्य कार्य बिना का नहीं होता। कार्य को अपना द्रव्य कारण नहीं है – ऐसा द्रव्य उसे नहीं होता, ऐसा नहीं होता। आहा...हा...! अद्‌भुत बात भाई!

ऐसी समता होने पर **अपने में राग-द्वेष भाव नहीं करता....** अर्थात्? राग-द्वेष के विकल्प जरा हों, परन्तु मैं आत्मा ज्ञाता-ज्ञानस्वरूपी शुद्धस्वभाव हूँ – ऐसा जानता हुआ उस राग को अपने ज्ञानस्वभाव में मिलाता, शामिल करता, खतौनी करता नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा समभाव है। कोई लकड़ी मारे तो समभाव (रखना) – ऐसा समभाव नहीं। लो! किसी ने लकड़ी मारी और क्षमा रखी, वह क्षमा नहीं।

मुमुक्षु – एक थप्पड़ मारे तो दूसरा मारने दे न!

उत्तर – मारे कहाँ? यह तो सब ख्रिस्ती की बातें हैं। ईशु ख्रिस्ती कहते हैं न! एक ऐसा मारे तो ऐसा मार, वह समभाव... यह समभाव की व्याख्या ही नहीं है।

समभाव की व्याख्या – आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव और पुण्य-पाप के विकल्प एक प्रकार के उत्पन्न हों, वह सब एक ही प्रकार का बन्धभाव है, दोनों विषमभाव है; स्वभाव समभाव है – ऐसा जहाँ विवेक होता है, वहाँ समभाव होता है। उसे समभाव कहते हैं। ऐसा दूसरे कहें एक ओर तू यहाँ

मारो, दूसरी ओर यहाँ मारो... ईशु ख्रिस्ती... उसे पता ही नहीं है। मारे किसे और सहन करना किसे? समझ में आया? ज्ञान भगवान आत्मा अपने समस्वभावी चैतन्यरस को ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जानता है। उसमें पुण्य-पाप की कमजोरी के कारण होनेवाले राग को स्वभाव में नहीं मिलाता। बस, इस अपेक्षा से वह राग-द्वेष को नहीं करता। समझ में आया? यह सामायिक की बात हुई।

अब, छेदोपस्थापना की (गाथा है)।

☆✯✰

छेदोपस्थापना चारित्र

हिंसादिउ-परिहारू करि जो अप्पा हु ठवेइ।
सो वियऊ चारित्तु मुणि जो पंचम-गइ णेइ॥ 101॥
हिंसादिक परिहार से, आत्म स्थिति को पाय।
यह दूजा चारित्र लख, पंचम गति ले जाय॥

अन्वयार्थ – (**जो हिंसादिउ-परिहारू करि अप्पा हु ठवेइ**) जो कोई हिंसा आदि पापों को त्याग करके आत्मा को स्थिर करता है (**सो वियऊ चारित्तु मुणि**) सो दूसरे चारित्र का धारी है, ऐसा जानो (**जो पंचम-गइ णेइ**) यह चारित्र पञ्चम गति को ले जाता है।

☆✯✰

हिंसादिउ-परिहारू करि जो अप्पा हु ठवेइ।
सो वियऊ चारित्तु मुणि जो पंचम-गइ णेइ॥ 101॥

जो कोई आत्मा, हिंसा आदि पाप के परिणाम के अभाव-स्वभावस्वरूप आत्मा को **स्थिर करता है.... अप्पा हु ठवेइ** नास्ति की। हिंसा, झूठ, चोरी आदि के भाव का अभाव करके, यह तो नास्ति से बात कही, भगवान ज्ञायकस्वरूप में **ठवेइ... ठवेइ...** 'छेदोपस्थापना' शब्द है न? भाई! इससे उसमें से यह शब्द निकाला। ऊपर 'स्थाप' शब्द है सही न? अहा...! इसलिए अध्यात्म की बात की। छेद + उपस्थित। छेद –

विकार का छेद करके आत्मा में स्थापित होना, उसे छेदोपस्थापना – ऐसा अर्थ यहाँ किया है। अध्यात्म है। परिहार में ऐसा लेंगे... यथाख्यात में ऐसा लेंगे। सूक्ष्म सम्पराय वह खोटा है, वह चारित्र यथाख्यात सूक्ष्म सम्पराय लिखा है, यह सूक्ष्म सम्पराय नहीं, यह यथाख्यात है। सूक्ष्म शब्द पड़ा है न! इसलिए भ्रम हो गया है। समझ में आया? आयेगा गाथा में।

यहाँ कहते हैं, **हिंसादिउ-परिहारू** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के भान में, काल में, स्वरूप की स्थिरता आत्मा में स्थापता है, तब उसे हिंसा आदि परिणामों का वहाँ अभाव होता है। अभाव होकर आत्मा में आत्मा को स्थापित करता है, वह **वियऊ चारित्तु...** योगीन्द्रदेव उसे छेदोपस्थापना कहना चाहते हैं। समझ में आया? वरना तो सामायिक में स्थिर होता है, उसमें कोई विकल्प दोष लगा हो, उसे छेदकर फिर स्थिर हो तो उसे छेदोपस्थापनीय कहते हैं।

यहाँ तो उसी प्रकार अध्यात्म से लिया है। भगवान आत्मा... छेद – उपस्थ, उपस्थ। भगवान आत्मा समस्वभावी वीतरागी बिम्ब आत्मा है। उसे वीतरागी स्वभाव से विरुद्ध हिंसा झूठ आदि का परिणाम जो विषम है, उन्हें छोड़कर स्वभाव में आत्मा को **थवेइ** स्थापित करता है, उसे दूसरा चारित्र छेदोपस्थापनीय कहा जाता है। कहो समझ में आया? अन्तिम गाथाएँ हैं न! चारित्र, मोक्ष का मूल है न! दर्शन-ज्ञान भले हो परन्तु मूल चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। **चारित्त खलु धम्मो** और पंचास्तिकाय में अन्त में चारित्र लिया है न! चारित्र में थोड़ा बाकी रहे, उतना पर समय बाकी है... चारित्र पूरा हो जाये, चारित्र की रमणता वही मोक्ष का कारण है। हाँ, वह चारित्र, सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता, यह अलग बात है परन्तु मोक्ष का साक्षात् कारण तो स्वरूप की रमणता है। आहा...हा...! वह रमणता स्वरूप के दर्शन और ज्ञान के बिना नहीं होती है। भगवान आत्मा समस्वभावी चैतन्यसूर्य के दर्शन, अवलोकन, उसकी श्रद्धा और उसके ज्ञान बिना स्वरूप

में स्थिरता – ऐसा चारित्र, रमणता – ऐसा चारित्र नहीं होता परन्तु वह चारित्र तो साक्षात् मोक्ष का कारण है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

वह दूसरे चारित्र का धारक है – ऐसा जानना। यह चारित्र पंचम गति को ले जाता है। पाठ है न देखो ! **पंचम-गइ णेइ** पहुँचाता है, पंचम गति पहुँचाता है, ले जाता है। भगवान आत्मा स्वरूप की रमणता करते, ध्रुवस्वरूप भगवान में रमणता करते हुए ध्रुव पर्याय – ऐसी प्रगट होती है, ध्रुव पर्याय अर्थात् है तो पर्याय परन्तु उसे कूटस्थरूप ऐसी की ऐसी ही स्थिरता कायम रहती है; इसलिए उसे एक न्याय से ध्रुव और कूटस्थ भी कहा जाता है।

ध्रुवस्वरूप में स्थिरतारूपी पर्याय प्रगट होने से केवलज्ञान को भी एक न्याय से कूटस्थ कहा है। पंचास्तिकाय... है न ? अपेक्षा से। ऐसा का ऐसा और ऐसा का ऐसा है। स्थिरता ऐसी की ऐसी, ऐसी की ऐसी स्थिरता रहती है। जैसे, स्वयं स्थिरबिम्ब भगवान है, उसमें स्थिरता का अन्तर अभ्यास होने पर वह स्थिरता ऐसी की ऐसी कायम रह जाती है। भले पलटे भले, परन्तु स्थिरता ऐसी की ऐसी वीतरागता कायम रहती है; इसलिए उसे ध्रुव भी एक न्याय से कहा जाता है। समझ में आया ? आहा...हा... !

यह अध्यात्म की बात की है न, उसकी – साधु की कितनी ही बात की है, ठीक है। उसका अन्तिम श्लोक तत्त्वार्थसार का है। **जहाँ हिंसादि के भेद से पापकर्मों का त्याग करना या व्रत भंग होने पर प्रायश्चित लेकर फिर व्रती होना, सो छेदोपस्थापना चारित्र है।** दो प्रकार का लिया है न ? दो प्रकार हैं। प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में दो प्रकार हैं। सामायिक में से भेद पड़कर स्थिर रहना या छेद करके स्थिर रहना – यह दो प्रकार के हैं। कहो, समझ में आया ? अब तीसरा श्लोक १०२, यह बहुत साधारण बात है। इसलिए नहीं लेते। देखो ! परिहारविशुद्धिचारित्र की व्याख्या अध्यात्म की।

क्रमशः

साधु तथा श्रावक के परिप्रेक्ष्य में षट् आवश्यक

जिनागम में जहाँ-जहाँ भी आवश्यक की चर्चा हुई है, वहाँ मुख्य रूप से साधु परमेष्ठी के 28 मूलगुण में षट् आवश्यक का वर्णन मिलता है। जिनागम में साधु तथा श्रावक दोनों की मुख्यता से आवश्यकों की चर्चा की गई है। साधु तथा श्रावक दोनों को ही जिनागम में षट् आवश्यक का परिपालन बतलाया है।

अब यहाँ 'आवश्यक' का स्वरूप कहते हैं—

श्रावक व साधु को अपने उपयोग की रक्षा के लिए नित्य ही छह क्रिया करने की आवश्यकता होती है। उन्हीं को श्रावक या साधु के षट् आवश्यक कहते हैं।

अवश के कार्य को 'आवश्यक' कहते हैं अर्थात् जो कषाय, राग-द्वेष आदि के वशीभूत न हो, वह अवश है, उस अवश का जो आचरण, वह आवश्यक है। जो इन्द्रियों के वश्य / अधीन नहीं होता, उसको अवश्य कहते हैं। ऐसे संयमी के अहोरात्रिक / दिन और रात में करने योग्य कार्यों का नाम ही आवश्यक है; अतः एव व्याधि आदि से ग्रस्त हो जाने पर भी इन्द्रियों के वश में न पड़कर जो दिन और रात के काम मुनियों को करने ही चाहिए, उन्हीं को आवश्यक कहते हैं।

इन आवश्यकों को हिन्दी शब्दकोष के आधार पर ऐसा भी कह सकते हैं कि 'जिसके बिना काम न चले' अर्थात् जिसके बिना साधुचर्या तथा श्रावक चर्या न पले, वे आवश्यक हैं—यह तो नास्तिपरक कथन हुआ। अब अस्तिपरक कथन कहते हैं कि जो साधुचर्या तथा श्रावक धर्म के पालन में परम आवश्यक हैं, वे आवश्यक कहलाते हैं तथा जो आत्मा में रत्नत्रय का निवास कराते हैं, उनको आवासक कहते हैं। इस प्रकार यह आवश्यक शब्द की व्याख्या हुई।

ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि षट् कर्मों का क्रमशः विस्तार हुआ है। पहले दान, पूजा, तप और शील को ही श्रावक का कर्तव्य माना जाता था।

आचार्य कुन्दकुन्द के चारित्र पाहुड़, वरांगचरित और हरिवंशपुराण में दान, पूजा, तप और शील को श्रावकों का कर्तव्य बतलाया है। आदिपुराण में आचार्य जिनसेन ने लिखा है कि चक्रवर्ती भरत ने पूजा, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तप को व्रती लोगों का कुलधर्म बतलाया।

उत्तर काल में शील का विश्लेषण वार्ता, स्वाध्याय और संयम के रूप में हुआ तथा बाद में वार्ता के स्थान में गुरुसेवा आयी और इस प्रकार देवपूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान — ये प्रत्येक श्रावक के दैनिक षट्कर्म कहलाए।

आचार्य अमितगति ने छह आवश्यक इस प्रकार बतलाये हैं —

सामायिक, स्तवन, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग।

ये ही आवश्यक मुनियों के मूलगुणों में गिनाये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में श्रावक के लिए भी ये ही दैनिक छह आवश्यक कर्म थे। बाद में इन्हीं के स्थान पर देवपूजा, गुरु उपास्ति आदि छह कर्मों का विधान किया गया।

इन्हीं कारणों से साधुओं के षट् आवश्यक का वर्णन मुख्यता से हुआ है।

साधुओं के षट् आवश्यक

अब साधुओं के षट् आवश्यक का वर्णन करते हैं—

साधुओं के षटावश्यक की चर्चा मूलाचार में इस प्रकार मिलती है—

समदा थवो य वंदण पाडिक्कमणं तहेव णादव्वं।
पच्चक्खाण विसग्गो करणीयावासया छप्पि।

तात्पर्य यह है कि समता, स्तवन, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग—इस प्रकार छह आवश्यक हैं, जो कि निश्चय क्रियाएँ हैं अर्थात् नियम से करने योग्य हैं। इन छहों को नित्य ही करना चाहिए।

छह आवश्यक पालने का एकमात्र उद्देश्य है — आत्मा में निश्चल स्थिति। जो आत्मा में रत्नत्रय का आवास कराती हैं, वे छहों क्रियाएँ आवश्यक हैं।

छहढालाकार कहते हैं —

समता सम्हारें, थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।

नित करें, श्रुतरति करें प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को॥

समता धारण करना, जिनेन्द्रदेव की स्तुति करना, वन्दना करना, शास्त्र पठन में रुचि, प्रतिक्रमण करना तथा कायोत्सर्ग करना—इस प्रकार ये साधुओं के षट् आवश्यक हैं।

इनका विवेचन इसप्रकार है—

सामायिक - जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु तथा सुख-दुःख इत्यादि में समभाव होना समता या सामायिक आवश्यक है।

आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं — आत्मा स्वभावों में स्थिरभाव करता है, उससे जीव को सामायिक गुण संपूर्ण होता है।

स्तवन - ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों के नाम का कथन और गुणों का कीर्तन करके तथा उसकी पूजा करके उनको मन, वचन, काय पूर्वक नमस्कार करना, वंदना करना स्तवन आवश्यक है।

वंदना - अरहंत, सिद्ध और उनकी प्रतिमा तथा तप, श्रुत या गुणों में बड़े गुरु और स्वगुरु का कृतिकर्म पूर्वक अथवा बिना कृतिकर्म के मन, वचन, काय पूर्वक प्रणाम करना, वंदना आवश्यक है।

प्रतिक्रमण - निंदा और गर्हापूर्वक, मन-वचन-काय के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के विषय में किए गए अपराधों का शोधन करना, प्रतिक्रमण आवश्यक है। अपने स्वभाव में रमण, निश्चय प्रतिक्रमण है।

प्रत्याख्यान या स्वाध्याय—

प्रत्याख्यान को स्वाध्याय भी कहा है। प्रत्याख्यान का अर्थ त्याग है, वह त्याग भी नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव के आश्रय से होता है।

प्रत्याख्यान आदि छह भेद हैं। मोक्षाभिलाषी मुनि, जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा तथा गुरु नियोग से उल्लसित होता हुआ सचित्त, अचित्त तथा मिश्र द्रव्यों का त्याग करता है। कर्म निर्जरा का इच्छुक साधु अनागत, अतिक्रान्त, कोटीयुत, अखंडित, साकार, निराकार, परिमाण, अपरिमाण, वर्तनीयात और सहेतुक के भेद से जो दस प्रकार के उपवास करता है; वह भी प्रत्याख्यान ही है। अनागत आदि का स्वरूप अनगार धर्मामृत अध्याय के 8वें श्लोक 69 की टीका आदि में वर्णित है, विस्तार भय से यहाँ मात्र नाम द्रष्टव्य है।

कहीं-कहीं प्रत्याख्यान को प्रतिक्रमण में गतार्थ कर उसके स्थान पर स्वध्याय का समावेश किया गया है। वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश के भेद से स्वाध्याय के पाँच भेद हैं। साधु को अपनी योग्यता के अनुसार प्रतिदिन पाँचों प्रकार का ही स्वाध्याय यथासंभव करना चाहिए। '**सम्मत्तस्स णिमितं जिणसुत्तं**' अर्थात् जिनसूत्र या श्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन का निमित्त है। यह स्वाध्याय ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ कर्मनिर्जरा का भी प्रमुख कारण है।

क्रमशः

मई 2025 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

2 मई – वैशाख शुक्ल 5-6
श्री अभिनंदननाथ गर्भ मोक्ष कल्याणक

4 मई – वैशाख शुक्ल 8 **अष्टमी**
श्री धर्मनाथ गर्भ कल्याणक

5 मई – वैशाख शुक्ल 9
श्री सुमतिनाथ तप कल्याणक

7 मई – वैशाख शुक्ल 10
श्री महावीरस्वामी ज्ञान कल्याणक

11 मई – वैशाख शुक्ल 14 **चतुर्दशी**

18 मई – ज्येष्ठ कृष्ण 6
श्री श्रेयांसनाथ गर्भ कल्याणक

20 मई – ज्येष्ठ कृष्ण 8 **अष्टमी**

22 मई – ज्येष्ठ कृष्ण 10
श्री विमलनाथ गर्भ कल्याणक

24 मई – ज्येष्ठ कृष्ण 12
श्री अनंतनाथ जन्म तप कल्याणक

26 मई – ज्येष्ठ कृष्ण 14 **चतुर्दशी**
श्री शांतिनाथ ज. त. मो. कल्याणक

27 मई – ज्येष्ठ कृष्ण अमावस
श्री अजितनाथ गर्भ कल्याणक

30 मई – ज्येष्ठ शुक्ल 4
श्री धर्मनाथ मोक्ष कल्याणक

31 मई – ज्येष्ठ शुक्ल 5
श्रुत पंचमी

प्रथमानुयोग

कवि परिचय

कवि परमेश्वर जी

आचार्य जिनसेन, कवियों के द्वारा पूज्य कवि परमेश्वर को प्रकट करते हुए उन्हें 'वागर्थसंग्रह' नामक पुराण के कर्ता बतलाते हैं और आचार्य गुणभद्र ने इनके पुराण को गद्यकथारूप, सभी छन्द और अलंकार का लक्ष्य, सूक्ष्म अर्थ तथा गूढ़ पदरचना वाला बतलाया है, जैसा कि उनके निम्न पद्य से स्पष्ट है —

कवि परमेश्वरनिगदितगद्यकथामात्रकं (मातृकं) पुरोश्चरितम्।
सकलच्छन्दोलङ्कृतिलक्ष्यं सूक्ष्मार्थगूढपदरचनम् ॥१८ ॥

आदिपुराण के प्रस्तुत संस्करण में जो संस्कृत टिप्पण दिया है, उसके प्रारंभ में भी टिप्पणकर्ता ने यही लिखा है.... तदनु कवि परमेश्वरेण प्रहृद्यगद्यकथारूपेण संकथितां त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिताश्रयां परमार्थबृहत्कथां संगृह्य..... ।

चामुण्डराय ने अपने पुराण में कवि परमेश्वर के नाम से अनेक पद्य उद्धृत किये हैं, जिससे डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने इनके पुराण को गद्य-पद्यमय चम्पूग्रंथ होने का अनुमान किया है। यह अनुमान प्राय: ठीक जान पड़ता है और तभी गुणभद्र द्वारा प्रदत्त 'सकलच्छन्दोऽलङ्कृतिलक्ष्यम्' विशेषण की यथार्थता जान पड़ती है। कवि परमेश्वर का आदिपंप, अभिनवपंप, नयसेन, अग्गलदेव और कमलभव आदि अनेक कवियों ने आदर के साथ स्मरण किया है, जिससे वे अपने समय के महान् विद्वान् जान पड़ते हैं। इनका समय अभी निश्चित नहीं है फिर भी जिनसेन के पूर्ववर्ती तो हैं ही। ●

आदिपुराण से साभार

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

महावीरस्वामी जन्म कल्याणक महोत्सव सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भगवान महावीर के जन्म कल्याणक के अवसर पर दिनांक 10 अप्रैल 2025 को तीर्थधाम मङ्गलायतन एवं उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों के द्वारा अत्यन्त हर्षोलास के साथ अंतिम शासननायक श्री महावीर भगवान के जन्म कल्याणक उत्सव का आयोजन किया गया। जिसमें प्रात: 06.45 से भगवान श्री महावीरस्वामी का प्रक्षाल पूजन, प्रभातफेरी एवं अध्यात्मयुग पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन का लाभ लिया। तत्पश्चात् हैदराबाद से पधारे पंडित पुनीत मंगलवर्धिनी के द्वारा 'जैनधर्म का इतिहास और भगवान महावीर का परिचय' विषय पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। दोपहर में बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा धवला वाँचना हुई।

सायंकालीन कार्यक्रम में सभी मंगलार्थियों द्वारा महावीर जिनालय में जिनेन्द्र भक्ति, जन्मकल्याणक की बधाई आदि भक्तिगीतों के माध्यम से भक्ति का कार्यक्रम हुआ और मङ्गलार्थी बच्चों द्वारा '**पणमामि वड्ढमाणम्**' गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें बच्चों के साथ-साथ पंडित अभिषेक शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, पंडित सुधीर शास्त्री ने भगवान महावीरस्वामी और उनके सिद्धांतों की प्रासंगिकता पर अपने उद्‌बोधन दिया। इस कार्यक्रम में तीर्थधाम मंगलायतन परिवार उपस्थित था।

पूज्य गुरुदेवश्री के उपकार दिवस पर गोष्ठी सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के जन्मदिवस के अवसर पर 29 अप्रैल 2025 को उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रातः पूजन के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का मांगलिक सी.डी. प्रवचन छहढाला, प्रथम ढाल पर हुआ, तत्पश्चात् डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा गुरुदेव के उपकार बताते हुए स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

सायंकालीन कार्यक्रम में जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् 'उपकार संगोष्ठी' कार्यक्रम आयोजित हुआ, जिसकी अध्यक्षता श्री अनिल जैन ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री पंकजभाई दोषी, पंडित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, पंडित अभिषेक शास्त्री और मङ्गलार्थी छात्र अनुभव ललितपुर, सिद्ध जैन बांदा, संयम जैन जयपुर। इसी अवसर पर मङ्गलार्थी तेजस जैन ने काव्य पाठ एवं अन्य सभी ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये। संचालन मङ्गलार्थी विराट चौहान ने किया। संपूर्ण कार्यक्रम में तीर्थधाम मङ्गलायतन के परिवारीजन भी उपस्थित रहे।

अक्षय तृतीया पर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा अक्षय तृतीया पर्व के अवसर पर उत्साह के साथ भगवान आदिनाथस्वामी का प्रक्षाल, पूजन तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन का लाभ लिया। तत्पश्चात् अक्षय तृतीया पर्व पर डा. सचिन्द्र शास्त्री का स्वाध्याय, दोपहर में महाबन्ध वाचना बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा, सायंकालीन जिनेन्द्र भक्ति, तत्पश्चात् अक्षय तृतीया पर्व पर आदरणीया बहिनजी द्वारा विशेष स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान का शिविर सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भगवान श्री महावीरस्वामी के जन्म कल्याणक के अवसर पर दिनांक 10 अप्रैल 2025 को तीर्थधाम मङ्गलायतन एवं उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 10 अप्रैल से 20 अप्रैल 2025 तक **जैन संस्कृति-नैतिक संस्कार शिविर** का आयोजन तीर्थधाम मङ्गलायतन में किया गया। जिसमें हैदराबाद से पधारे पंडित पुनीत मंगलवर्धिनी के व्याख्यानों और कक्षाओं का लाभ भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थियों को प्राप्त हुआ।

जैन विद्या शोध संस्थान के उपाध्यक्ष प्रो. अभयकुमार जैन लखनऊ ने बतलाया कि जैन धर्म के संरक्षण व प्रचार-प्रसार के लिये इन शिविरों की महती भूमिका है। अन्तिम दिन छात्रों को पुरस्कार एवं सर्टीफिकेट प्रदान किये गये।

तीर्थधाम मङ्गलायतन का सुयश

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के सत्र 2019 के **मंगलार्थी स्वर्णिम चौधरी जबलपुर** का चयन **आई.ए.एस.** के लिए हुआ है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार उनके एवं उनके परिवारीजनों के प्रति हार्दिक बधाई प्रेषित करता है एवं उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

अपनी प्रति आरक्षित करें

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया द्वारा विरचित **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** का नवीन संस्करण का प्रकाशन तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा किया जा रहा है। अपनी प्रतियाँ आरक्षित करावें।

सम्पर्क सूत्र : पंडित अभिषेक शास्त्री - 9997996346

12. गुरुदेवश्री विषय से विषयांतर नहीं होते।

13. गुरुदेवश्री प्रवचन में यह नहीं कहते कि कल खुलासा करूँगा बल्कि यह कहते हैं विशेष आगे आएगा।

14. गुरुदेवश्री प्रवचन में किसी व्यक्ति का मान पोषण अथवा चापलूसी नहीं करते बल्कि धनवानों के प्रति करुणा रखते हुए उन्हें आत्म कल्याण की प्रेरणा देते हैं और विद्वानों के प्रति बहुमान करते हुए उन्हें आदर देते हैं।

15. गुरुदेवश्री लगभग प्रत्येक प्रवचन में दिगंबर आचार्यों, मुनिराजों और ज्ञानी विद्वानों के योगदान की हृदय से सराहना करते हैं।

16. गुरुदेवश्री अपने प्रवचनों में तीखी भाषा का प्रयोग नहीं करते बल्कि उनकी भाषा में करुणा, वात्सल्य और स्नेह का समावेश होता है।

17. गुरुदेवश्री अपने प्रवचन में यदि किसी विषय के बारे में उन्हें जानकारी नहीं है तो वह स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि यह मेरे पढ़ने में नहीं आया।

18. गुरुदेवश्री अपने प्रवचनों में कोई भी बात बिना आगम प्रमाण के नहीं करते। मौलिक चिंतन के नाम पर 'मुझे ऐसा लगता है' — ऐसा प्रयोग नहीं करते।

19. गुरुदेवश्री अपने प्रवचन के शुभारंभ में कोई भूमिका नहीं बनाते बल्कि सीधा ही कहते हैं – 'यह विषय चल रहा है।'

20. यदि कोई श्रोता गुरुदेवश्री प्रवचन में गुरुदेवश्री की प्रशंसा या उनका बहुमान करता है तो वे उसे उपेक्षित करके आगे बढ़ जाते हैं।

21. गुरुदेवश्री अपने प्रवचन में स्वयं की व्यक्तिगत प्रशंसा नहीं करते, ना ही अपनी किसी उपलब्धि का महिमा मंडन करते हैं।

– जिनदेशना – 30 अप्रैल 2025

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मुनिराज की क्रीड़ा और उनका क्रीड़ास्थल

जैसे कोई फूलों की सुगन्ध लेने बाग में जाए और वहाँ उनकी सौरभ में तल्लीन हो जाए, वैसे ही **मुनिराज राग की क्रीड़ा छोड़कर चैतन्य के बाग में खेलते-खेलते कर्म के फल का नाश करते हैं और अतीन्द्रिय आनन्द के फल का वेदन करते हैं, अनुभव करते हैं।** चैतन्य के बाग में क्रीड़ा करनेवाले मुनिराज को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र हुआ है, आनन्दादि अनन्त गुण खिल उठे हैं, अन्तर्निमग्नदशा तीव्र प्रगट हुई है। **अहा! मुनिपना बड़ी अद्भुत वस्तु है!**

भाई! बाग में हजारों पुष्पवृक्ष होते हैं, उसी प्रकार मुनिराज को भगवान आत्मा के बाग में अनन्त गुण निर्मल पर्यायोंरूप से खिल उठे हैं, क्योंकि चारित्र है ना! मुनिराज आत्म-उद्यान में खेलते-खेलते, लीला करते-करते, किञ्चित दु:ख बिना, अन्तर में अनन्त आनन्द की धारा में निमग्न रहकर, कर्म के फल का नाश करते हैं। वास्तव में तो उस समय कर्मफल उत्पन्न ही नहीं होता, उसे 'नाश करते हैं' — ऐसा कहा जाता है।

(- वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ 209)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com